12070CH12

जैनेंद्र कुमार 12

जन्म : *सन् 1905, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)*

प्रमुख रचनाएँ : *परख, अनाम स्वामी, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध (उपन्यास); वातायन, एक रात, दो चिड़िया, फाँसी, नीलम देश की राजकन्या, पाज़ेब (कहानी-संग्रह); प्रस्तुत प्रश्न, जड़ की बात, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, सोच-विचार, समय और हम (विचार-प्रधान निबंध-संग्रह)*

प्रमुख पुरस्कार : *साहित्य अकादेमी पुरस्कार, भारत-भारती सम्मान। भारत सरकार द्वारा* ***पद्मभूषण*** *से सम्मानित*

निधन : *सन् 1990 में*

यथार्थ को अंतिम सत्य के रूप में ओढ़कर जो अपने को विवश मान बैठ सकता है, वही तो असमर्थ है। पर जिसने स्वप्न के सत्य के दर्शन किए वह यथार्थ की विकटता से कैसे निरुत्साहित हो सकता है?

हिंदी में प्रेमचंद के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित जैनेंद्र कुमार का अवदान बहुत व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से उन्होंने हिंदी में एक सशक्त मनोवैज्ञानिक कथा-धारा का प्रवर्तन किया। ***परख*** *और* ***सुनीता*** *के बाद 1937 में प्रकाशित* ***त्यागपत्र*** *ने इन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में प्रभूत प्रतिष्ठा दिलाई। इसी तरह* ***खेल, पाज़ेब, नीलम देश की राजकन्या, अपना-अपना भाग्य, तत्सत*** *जैसी कहानियों को भी कालजयी रचनाओं के रूप में मान्यता मिली है।*

कथाकार होने के साथ-साथ जैनेंद्र की पहचान अत्यंत गंभीर चिंतक के रूप में रही। बहुत सरल एवं अनौपचारिक-सी दिखनेवाली शैली में उन्होंने समाज, राजनीति, अर्थनीति एवं दर्शन से संबंधित गहन प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश की है। अपनी गांधीवादी चिंतन-दृष्टि का जितना सुष्ठु एवं सहज उपयोग वे जीवन-जगत से जुड़े प्रश्नों के संदर्भ में करते हैं, वह

अन्यत्र दुर्लभ है और वह इस बात का सबूत पेश करता है कि गांधीवाद को उन्होंने कितनी गहराई से हृदयंगम किया है।

बाज़ार दर्शन *जैनेंद्र का एक महत्त्वपूर्ण निबंध है, जिसमें गहरी वैचारिकता और साहित्य सुलभ लालित्य का दुर्लभ संयोग देखा जा सकता है। हिंदी में उपभोक्तावाद एवं बाज़ारवाद पर व्यापक चर्चा पिछले एक-डेढ़ दशक पहले ही शुरू हुई है, पर कई दशक पहले लिखा गया जैनेंद्र का लेख आज भी इनकी मूल अंतर्वस्तु को समझाने के मामले में बेजोड़ है। वे अपने परिचितों, मित्रों से जुड़े अनुभव बताते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि बाज़ार की जादुई ताकत कैसे हमें अपना गुलाम बना लेती है। अगर हम अपनी आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझकर बाज़ार का उपयोग करें, तो उसका लाभ उठा सकते हैं। लेकिन अगर हम ज़रूरत को तय कर बाज़ार में जाने के बजाय उसकी चमक-दमक में फँस गए तो वह असंतोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर हमें सदा के लिए बेकार बना सकता है। इस मूलभाव को जैनेंद्र कुमार ने भाँति-भाँति से समझाने की कोशिश की है। कहीं दार्शनिक अंदाज़ में, तो कहीं किस्सागो की तरह। इसी क्रम में केवल बाज़ार का पोषण करने वाले अर्थशास्त्र को उन्होंने अनीतिशास्त्र बताया है।*

बाज़ार दर्शन

एक बार की बात कहता हूँ। मित्र बाज़ार गए तो थे कोई एक मामूली चीज़ लेने पर लौटे तो एकदम बहुत-से बंडल पास थे।

मैंने कहा—यह क्या?

बोले—यह जो साथ थीं।

उनका आशय था कि यह पत्नी की महिमा है। उस महिमा का मैं कायल हूँ। आदिकाल से इस विषय में पति से पत्नी की ही प्रमुखता प्रमाणित है। और यह व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं, स्त्रीत्व का प्रश्न है। स्त्री माया न जोड़े, तो क्या मैं जोड़ूँ? फिर भी सच सच है और वह यह कि इस बात में पत्नी की ओट ली जाती है। मूल में एक और तत्त्व की महिमा सविशेष है। वह तत्त्व है मनीबैग, अर्थात पैसे की गरमी या एनर्जी।

पैसा पावर है। पर उसके सबूत में आस-पास माल-टाल न जमा हो तो क्या वह खाक पावर है! पैसे को देखने के लिए बैंक-हिसाब देखिए, पर माल-असबाब मकान-कोठी तो अनदेखे भी दीखते हैं। पैसे की उस 'पर्चेज़िंग पावर' के प्रयोग में ही पावर का रस है।

लेकिन नहीं। लोग संयमी भी होते हैं। वे फ़िज़ूल सामान को फ़िज़ूल समझते हैं। वे पैसा बहाते नहीं हैं और बुद्धिमान होते हैं। बुद्धि और संयमपूर्वक वह पैसे को जोड़ते जाते हैं, जोड़ते जाते हैं। वह पैसे की पावर को इतना निश्चय समझते हैं कि उसके प्रयोग की परीक्षा उन्हें दरकार नहीं है। बस खुद पैसे के जुड़ा होने पर उनका मन गर्व से भरा फूला रहता है।

मैंने कहा—यह कितना सामान ले आए!

मित्र ने सामने मनीबैग फैला दिया, कहा—यह देखिए। सब उड़ गया, अब जो रेल-टिकट के लिए भी बचा हो!

मैंने तब तय माना कि और पैसा होता और सामान आता। वह सामान ज़रूरत की तरफ़ देखकर नहीं आया, अपनी 'पर्चेज़िंग पावर' के अनुपात में आया है।

लेकिन ठहरिए। इस सिलसिले में एक और भी महत्त्व का तत्त्व है, जिसे नहीं भूलना चाहिए। उसका भी इस करतब में बहुत-कुछ हाथ है। वह महत्त्व है, बाज़ार।

मैंने कहा—यह इतना कुछ नाहक ले आए!

मित्र बोले–कुछ न पूछो। बाज़ार है कि शैतान का जाल है? ऐसा सजा–सजाकर माल रखते हैं कि बेहया ही हो जो न फँसे।

मैंने मन में कहा, ठीक। बाज़ार आमंत्रित करता है कि आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है? मैं तुम्हारे लिए हूँ। नहीं कुछ चाहते हो, तो भी देखने में क्या हरज़ है। अजी आओ भी। इस आमंत्रण में यह खूबी है कि आग्रह नहीं है आग्रह तिरस्कार जगाता है। लेकिन ऊँचे बाज़ार का आमंत्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव। चौक बाज़ार में खड़े होकर आदमी को लगने लगता है कि उसके अपने पास काफ़ी नहीं है और चाहिए, और चाहिए। मेरे यहाँ कितना परिमित है और यहाँ कितना अतुलित है ओह!

कोई अपने को न जाने तो बाज़ार का यह चौक उसे कामना से विकल बना छोड़े। विकल क्यों, पागल। असंतोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर मनुष्य को सदा के लिए यह बेकार बना डाल सकता है।

एक और मित्र की बात है। यह दोपहर के पहले के गए–गए बाज़ार से कहीं शाम को वापिस आए। आए तो खाली हाथ!

मैंने पूछा–कहाँ रहे?

बोले–बाज़ार देखते रहे।

मैंने कहा–बाज़ार को देखते क्या रहे?

बोले–क्यों? बाज़ार!

तब मैंने कहा–लाए तो कुछ नहीं!

बोले–हाँ पर यह समझ न आता था कि न लूँ तो क्या? सभी कुछ तो लेने को जी होता था। कुछ लेने का मतलब था शेष सब-कुछ को छोड़ देना। पर मैं कुछ भी नहीं छोड़ना चाहता था। इससे मैं कुछ भी नहीं ले सका।

मैंने कहा–खूब!

पर मित्र की बात ठीक थी। अगर ठीक पता नहीं है कि क्या चाहते हो तो सब ओर की चाह तुम्हें घेर लेगी। और तब परिणाम त्रास ही होगा, गति नहीं होगी, न कर्म।

बाज़ार में एक जादू है। वह जादू आँख की राह काम करता है। वह रूप का जादू है पर जैसे चुंबक का जादू लोहे पर ही चलता है, वैसे ही इस जादू की भी मर्यादा है। जेब भरी हो, और मन खाली हो, ऐसी हालत में जादू का असर खूब होता है। जेब खाली पर मन भरा न हो, तो भी जादू चल जाएगा। मन खाली है तो बाज़ार की अनेकानेक चीज़ों का निमंत्रण उस तक पहुँच जाएगा। कहीं हुई उस वक्त जेब भरी तब तो फिर वह मन किसकी मानने वाला है! मालूम होता है यह भी लूँ, वह भी लूँ। सभी सामान ज़रूरी और आराम को बढ़ाने वाला मालूम होता है। पर यह सब जादू का असर है। जादू की सवारी उतरी कि पता चलता है कि फ़ैंसी चीज़ों की बहुतायत आराम में मदद नहीं देती, बल्कि खलल ही डालती है। थोड़ी देर को स्वाभिमान को ज़रूर सेंक मिल जाता है पर इससे अभिमान की गिल्टी की और खुराक ही मिलती है। जकड़ रेशमी डोरी की हो तो रेशम के स्पर्श के मुलायम के कारण क्या वह कम जकड़ होगी?

पर उस जादू की जकड़ से बचने का एक सीधा-सा उपाय है। वह यह कि बाज़ार जाओ तो खाली मन न हो। मन खाली हो, तब बाज़ार न जाओ। कहते हैं लू में जाना हो तो पानी पीकर जाना चाहिए। पानी भीतर हो, लू का लूपन व्यर्थ हो जाता है। मन लक्ष्य में भरा हो तो बाज़ार भी फैला-का-फैला ही रह जाएगा। तब वह घाव बिलकुल नहीं दे सकेगा, बल्कि कुछ आनंद ही देगा। तब बाज़ार तुमसे कृतार्थ होगा, क्योंकि तुम कुछ-न-कुछ सच्चा लाभ उसे दोगे। बाज़ार की असली कृतार्थता है आवश्यकता के समय काम आना।

यहाँ एक अंतर चीन्ह लेना बहुत ज़रूरी है। मन खाली नहीं रहना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि वह मन बंद रहना चाहिए। जो बंद हो जाएगा, वह शून्य हो जाएगा। शून्य

होने का अधिकार बस परमात्मा का है जो सनातन भाव से संपूर्ण है। शेष सब अपूर्ण है। इससे मन बंद नहीं रह सकता। सब इच्छाओं का निरोध कर लोगे, यह झूठ है और अगर 'इच्छानिरोधस्तप:' का ऐसा ही नकारात्मक अर्थ हो तो वह तप झूठ है। वैसे तप की राह रेगिस्तान को जाती होगी, मोक्ष की राह वह नहीं है। ठाठ देकर मन को बंद कर रखना जड़ता है। लोभ का यह जीतना नहीं है कि जहाँ लोभ होता है, यानी मन में, वहाँ नकार हो! यह तो लोभ की ही जीत है और आदमी की हार। आँख अपनी फोड़ डाली, तब लोभनीय के दर्शन से बचे तो क्या हुआ? ऐसे क्या लोभ मिट जाएगा? और कौन कहता है कि आँख फूटने पर रूप दीखना बंद हो जाएगा? क्या आँख बंद करके ही हम सपने नहीं लेते हैं? और वे सपने क्या चैन-भंग नहीं करते हैं? इससे मन को बंद कर डालने की कोशिश तो अच्छी नहीं। वह अकारथ है यह तो हठवाला योग है। शायद हठ-ही-हठ है, योग नहीं है। इससे मन कृश भले हो जाए और पीला और अशक्त जैसे विद्वान का ज्ञान। वह मुक्त ऐसे नहीं होता। इससे वह व्यापक की जगह संकीर्ण और विराट की जगह क्षुद्र होता है। इसलिए उसका रोम-रोम मूँदकर बंद तो मन को करना नहीं चाहिए। वह मन पूर्ण कब है? हम में पूर्णता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न होते? अपूर्ण हैं, इसी से हम हैं। सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूर्णता के बोध को हम में गहरा करता है। सच्चा कर्म सदा इस अपूर्णता की स्वीकृति के साथ होता है। अत: उपाय कोई वही हो सकता है जो बलात् मन को रोकने को न कहे, जो मन को भी इसलिए सुने क्योंकि वह अप्रयोजनीय रूप में हमें नहीं प्राप्त हुआ है। हाँ, मनमानेपन की छूट मन को न हो, क्योंकि वह अखिल का अंग है, खुद कुल नहीं है।

पड़ोस में एक महानुभाव रहते हैं जिनको लोग भगत जी कहते हैं। चूरन बेचते हैं। यह काम करते, जाने उन्हें कितने बरस हो गए हैं। लेकिन किसी एक भी दिन चूरन से उन्होंने छ: आने पैसे से ज़्यादा नहीं कमाए। चूरन उनका आस-पास सरनाम है। और खुद खूब लोकप्रिय हैं। कहीं व्यवसाय का गुर पकड़ लेते और उस पर चलते तो आज खुशहाल क्या मालामाल होते! क्या कुछ उनके पास न होता! इधर दस वर्षों से मैं देख रहा हूँ, उनका चूरन हाथों-हाथ बिक जाता है। पर वह न उसे थोक देते हैं, न व्यापारियों को बेचते हैं। पेशगी आर्डर कोई नहीं लेते। बँधे वक्त पर अपनी चूरन की पेटी लेकर घर से बाहर हुए नहीं कि देखते-देखते छह आने की कमाई उनकी हो जाती है। लोग उनका चूरन लेने को उत्सुक जो रहते हैं। चूरन से भी अधिक शायद वह भगत जी के प्रति अपनी सद्भावना का देय देने को उत्सुक रहते हैं। पर छह आने पूरे हुए नहीं कि भगतजी बाकी चूरन बालकों को मुफ़्त बाँट देते हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ है कि कोई उन्हें पच्चीसवाँ पैसा भी दे सके। कभी चूरन में लापरवाही नहीं हुई है, और कभी रोग होता भी मैंने उन्हें नहीं देखा है।

और तो नहीं, लेकिन इतना मुझे निश्चय मालूम होता है कि इन चूरनवाले भगत जी पर बाज़ार का जादू नहीं चल सकता।

कहीं आप भूल न कर बैठिएगा। इन पंक्तियों को लिखने वाला मैं चूरन नहीं बेचता हूँ। जी नहीं, ऐसी हलकी बात भी न सोचिएगा। यह समझिएगा कि लेख के किसी भी मान्य पाठक से उस चूरन वाले को श्रेष्ठ बताने की मैं हिम्मत कर सकता हूँ। क्या जाने उस भोले आदमी को अक्षर-ज्ञान तक भी है या नहीं । और बड़ी बातें तो उसे मालूम क्या होंगी। और हम-आप न जाने कितनी बड़ी-बड़ी बातें जानते हैं। इससे यह तो हो सकता है कि वह चूरन वाला भगत हम लोगों के सामने एकदम नाचीज़ आदमी हो। लेकिन आप पाठकों की विद्वान श्रेणी का सदस्य होकर भी मैं यह स्वीकार नहीं करना चाहता हूँ कि उस अपदार्थ प्राणी को वह प्राप्त है जो हम में से बहुत कम को शायद प्राप्त है। उस पर बाज़ार का जादू वार नहीं कर पाता। माल बिछा रहता है, और उसका मन अडिग रहता है। पैसा उससे आगे होकर भीख तक माँगता है कि मुझे लो। लेकिन उसके मन में पैसे पर दया नहीं समाती। वह निर्मम व्यक्ति पैसे को अपने आहत गर्व में बिलखता ही छोड़ देता है। ऐसे आदमी के आगे क्या पैसे की व्यंग्य-शक्ति कुछ भी चलती होगी? क्या वह शक्ति कुंठित रहकर सलज्ज ही न हो जाती होगी?

पैसे की व्यंग्य-शक्ति की सुनिए। वह दारुण है। मैं पैदल चल रहा हूँ कि पास ही धूल उड़ाती निकल गई मोटर। वह क्या निकली मेरे कलेजे को कौंधती एक कठिन व्यंग्य की लीक ही आर-से-पार हो गई। जैसे किसी ने आँखों में उँगली देकर दिखा दिया हो कि देखो, उसका नाम है मोटर, और तुम उससे वंचित हो! यह मुझे अपनी ऐसी विडंबना मालूम होती है कि बस पूछिए नहीं। मैं सोचने को हो आता हूँ कि हाय, ये ही माँ-बाप रह गए थे जिनके यहाँ मैं जन्म लेने को था! क्यों न मैं मोटरवालों के यहाँ हुआ! उस व्यंग्य में इतनी शक्ति है कि ज़रा में मुझे अपने सगों के प्रति कृतघ्न कर सकती है।

लेकिन क्या लोकवैभव की यह व्यंग्य-शक्ति उस चूरन वाले अकिंचित्कर मनुष्य के आगे चूर-चूर होकर ही नहीं रह जाती? चूर-चूर क्यों, कहो पानी-पानी।

तो वह क्या बल है जो इस तीखे व्यंग्य के आगे ही अजेय ही नहीं रहता, बल्कि मानो उस व्यंग्य की क्रूरता को ही पिघला देता है?

उस बल को नाम जो दो; पर वह निश्चय उस तल की वस्तु नहीं है जहाँ पर संसारी वैभव फलता-फूलता है। वह कुछ अपर जाति का तत्त्व है। लोग स्पिरिचुअल कहते हैं; आत्मिक, धार्मिक, नैतिक कहते हैं। मुझे योग्यता नहीं कि मैं उन शब्दों में अंतर देखूँ और प्रतिपादन करूँ। मुझे शब्द से सरोकार नहीं। मैं विद्वान नहीं कि शब्दों पर अटकूँ। लेकिन इतना तो है कि जहाँ तृष्णा है, बटोर रखने की स्पृहा है, वहाँ उस बल का बीज नहीं है। बल्कि यदि उसी बल को सच्चा बल मानकर बात की जाए तो कहना होगा कि संचय की तृष्णा

और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्बलता ही प्रमाणित होती है। निर्बल ही धन की ओर झुकता है। वह अबलता है। वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है।

एक बार चूरन वाले भगत जी बाज़ार चौक में दीख गए। मुझे देखते ही उन्होंने जय-जयराम किया। मैंने भी जयराम कहा। उनकी आँखें बंद नहीं थीं और न उस समय वह बाज़ार को किसी भाँति कोस रहे मालूम होते थे। राह में बहुत लोग, बहुत बालक मिले जो भगत जी द्वारा पहचाने जाने के इच्छुक थे। भगत जी ने सबको ही हँसकर पहचाना। सबका अभिवादन लिया और सबको अभिवादन किया। इससे तनिक भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि चौक-बाज़ार में होकर उनकी आँखें किसी से भी कम खुली थीं। लेकिन भौंचक्के हो रहने की लाचारी उन्हें नहीं थी। व्यवहार में पसोपेश उन्हें नहीं था और खोए-से खड़े नहीं वह रह जाते थे। भाँति-भाँति के बढ़िया माल से चौक भरा पड़ा है। उस सबके प्रति अप्रीति इस भगत के मन में नहीं है। जैसे उस समूचे माल के प्रति भी उनके मन में आशीर्वाद हो सकता है। विद्रोह नहीं, प्रसन्नता ही भीतर है, क्योंकि कोई रिक्त भीतर नहीं है। देखता हूँ कि खुली आँख, तुष्ट और मग्न, वह चौक-बाज़ार में से चलते चले जाते हैं। राह में बड़े-बड़े फैंसी स्टोर पड़ते हैं, पर पड़े रह जाते हैं। कहीं भगत नहीं रुकते । रुकते हैं तो एक छोटी पंसारी की दुकान पर रुकते हैं। वहाँ दो-चार अपने काम की चीज़ लीं, और चले आते हैं। बाज़ार से हठपूर्वक विमुखता उनमें नहीं है; लेकिन अगर उन्हें जीरा और काला नमक चाहिए तो सारे चौक-बाज़ार की सत्ता उनके लिए तभी तक है, तभी तक उपयोगी है, जब तक वहाँ जीरा मिलता है। ज़रूरत-भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है। वह जानते हैं कि जो उन्हें चाहिए वह है जीरा नमक। बस इस निश्चित प्रतीति के बल पर शेष सब चाँदनी चौक का आमंत्रण उन पर व्यर्थ होकर बिखरा रहता है। चौक की चाँदनी दाएँ-बाएँ भूखी-की-भूखी फैली रह जाती है; क्योंकि भगत जी को जीरा चाहिए वह तो कोने वाली पंसारी की दुकान से मिल जाता है और वहाँ से सहज भाव में ले लिया गया है। इसके आगे आस-पास अगर चाँदनी बिछी रहती है तो बड़ी खुशी से बिछी रहे, भगत जी से बेचारी का कल्याण ही चाहते हैं।

यहाँ मुझे ज्ञात होता है कि बाज़ार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है। और जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेजिंग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति—शैतानी शक्ति, व्यंग्य की शक्ति ही बाज़ार को देते हैं। न तो वे बाज़ार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाज़ार को सच्चा लाभ दे सकते हैं। वे लोग बाज़ार का बाज़ारूपन बढ़ाते हैं। जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी। इस सद्भाव के ह्रास पर आदमी आपस में भाई-भाई और सुहृद और पड़ोसी फिर रह ही नहीं जाते हैं और आपस में कोरे

गाहक और बेचक की तरह व्यवहार करते हैं। मानो दोनों एक-दूसरे को ठगने की घात में हों। एक की हानि में दूसरे का अपना लाभ दीखता है और यह बाज़ार का, बल्कि इतिहास का; सत्य माना जाता है ऐसे बाज़ार को बीच में लेकर लोगों में आवश्यकताओं का आदान-प्रदान नहीं होता; बल्कि शोषण होने लगता है तब कपट सफल होता है, निष्कपट शिकार होता है। ऐसे बाज़ार मानवता के लिए विडंबना हैं और जो ऐसे बाज़ार का पोषण करता है, जो उसका शास्त्र बना हुआ है; वह अर्थशास्त्र सरासर औंधा है वह मायावी शास्त्र है वह अर्थशास्त्र अनीति-शास्त्र है।

पाठ के साथ

1. बाज़ार का जादू चढ़ने और उतरने पर मनुष्य पर क्या-क्या असर पड़ता है?
2. बाज़ार में भगत जी के व्यक्तित्व का कौन-सा सशक्त पहलू उभरकर आता है? क्या आपकी नज़र में उनका आचरण समाज में शांति-स्थापित करने में मददगार हो सकता है?
3. 'बाज़ारूपन' से क्या तात्पर्य है? किस प्रकार के व्यक्ति बाज़ार को सार्थकता प्रदान करते हैं अथवा बाज़ार की सार्थकता किसमें है?
4. बाज़ार किसी का लिंग, जाति, धर्म या क्षेत्र नहीं देखता; वह देखता है सिर्फ़ उसकी क्रय शक्ति को। इस रूप में वह एक प्रकार से सामाजिक समता की भी रचना कर रहा है। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?
5. आप अपने तथा समाज से कुछ ऐसे प्रसंग का उल्लेख करें–
   (क) जब पैसा शक्ति के परिचायक के रूप में प्रतीत हुआ।
   (ख) जब पैसे की शक्ति काम नहीं आई।

पाठ के आसपास

1. **बाज़ार दर्शन** पाठ में बाज़ार जाने या न जाने के संदर्भ में मन की कई स्थितियों का ज़िक्र आया है। आप इन स्थितियों से जुड़े अपने अनुभवों का वर्णन कीजिए।
   (क) मन खाली हो   (ख) मन खाली न हो
   (ग) मन बंद हो   (घ) मन में नकार हो
2. बाज़ार दर्शन पाठ में किस प्रकार के ग्राहकों की बात हुई है? आप स्वयं को किस श्रेणी का ग्राहक मानते/मानती हैं?
3. आप बाज़ार की भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्कृति से अवश्य परिचित होंगे। मॉल की संस्कृति और सामान्य बाज़ार और हाट की संस्कृति में आप क्या अंतर पाते हैं? **पर्चेज़िंग पावर** आपको किस तरह के बाज़ार में नज़र आती है?

4. लेखक ने पाठ में संकेत किया है कि कभी-कभी बाज़ार में आवश्यकता ही शोषण का रूप धारण कर लेती है। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
5. **स्त्री माया न जोड़े** यहाँ **माया** शब्द किस ओर संकेत कर रहा है? स्त्रियों द्वारा माया जोड़ना प्रकृति प्रदत्त नहीं, बल्कि परिस्थितिवश है। वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जो स्त्री को माया जोड़ने के लिए विवश कर देती हैं?

आपसदारी

1. **ज़रूरत-भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है**– भगत जी की इस संतुष्ट निस्पृहता की कबीर की इस सूक्ति से तुलना कीजिए–

   चाह गई चिंता गई मनुआँ बेपरवाह
   जाके कछु न चाहिए सोइ सहंसाह।
   –कबीर

2. विजयदान देथा की कहानी 'दुविधा' (जिस पर 'पहेली' फ़िल्म बनी है) के अंश को पढ़ कर आप देखेंगे/देखेंगी कि भगत जी की संतुष्ट जीवन-दृष्टि की तरह ही गड़रिए की जीवन-दृष्टि है, इससे आपके भीतर क्या भाव जगते हैं?

   गड़रिया बगैर कहे ही उस के दिल की बात समझ गया, पर अँगूठी कबूल नहीं की। काली दाढ़ी के बीच पीले दाँतों की हँसी हँसते हुए बोला– 'मैं कोई राजा नहीं हूँ जो न्याय की कीमत वसूल करूँ। मैंने तो अटका काम निकाल दिया। और यह अँगूठी मेरे किस काम की! न यह अँगुलियों में आती है, न तड़े में। मेरी भेड़ें भी मेरी तरह गँवार हैं। घास तो खाती हैं, पर सोना सूँघती तक नहीं। बेकार की वस्तुएँ तुम अमीरों को ही शोभा देती हैं।'
   –विजयदान देथा

3. **बाज़ार** पर आधारित लेख **नकली सामान पर नकेल ज़रूरी** का अंश पढ़िए और नीचे दिए गए बिंदुओं पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
   (क) नकली सामान के खिलाफ़ जागरूकता के लिए आप क्या कर सकते हैं?
   (ख) उपभोक्ताओं के हित को मद्देनज़र रखते हुए सामान बनाने वाली कंपनियों का क्या नैतिक दायित्व हैं?
   (ग) ब्रांडेड वस्तु को खरीदने के पीछे छिपी मानसिकता को उजागर कीजिए?

नकली सामान पर नकेल ज़रूरी

अपना क्रेता वर्ग बढ़ाने की होड़ में एफएमसीजी यानी तेज़ी से बिकने वाले उपभोक्ता उत्पाद बनाने वाली कंपनियाँ गाँव के बाज़ारों में नकली सामान भी उतार रही हैं। कई उत्पाद ऐसे होते हैं जिन पर न तो निर्माण तिथि होती है और न ही उस तारीख का ज़िक्र होता है जिससे पता चले कि अमुक सामान के इस्तेमाल की अवधि समाप्त हो चुकी है। आउटडेटेड या पुराना पड़ चुका सामान भी गाँव-देहात के बाज़ारों में खप रहा है। ऐसा उपभोक्ता मामलों के जानकारों का मानना है। नेशनल कंज्यूमर डिस्प्यूट्स रिड्रेसल कमीशन के सदस्य की मानें तो जागरूकता अभियान में तेज़ी लाए बगैर इस गोरखधंधे पर लगाम कसना नामुमकिन है।

उपभोक्ता मामलों की जानकार पुष्पा गिरि माँ जी का कहना है, 'इसमें दो राय नहीं कि गाँव-देहात के बाज़ारों में नकली सामान बिक रहा है। महानगरीय उपभोक्ताओं को अपने शिकंजे में कसकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, खासकर ज़्यादा उत्पाद बेचने वाली कंपनियाँ, गाँव का रुख कर चुकी हैं। वे गाँववालों के अज्ञान और उनके बीच जागरूकता के अभाव का पूरा फ़ायदा उठा रही हैं। उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए कानून ज़रूर हैं लेकिन कितने लोग इनका सहारा लेते हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं। गुणवत्ता के मामले में जब शहरी उपभोक्ता ही उतने सचेत नहीं हो पाए हैं तो गाँव वालों से कितनी उम्मीद की जा सकती है।

इस बारे में नेशनल कंज्यूमर डिस्प्यूट्स रिड्रेसल कमीशन के सदस्य जस्टिस एस. एन. कपूर का कहना है, 'टीवी ने दूर-दराज़ के गाँवों तक में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पहुँचा दिया है। बड़ी-बड़ी कंपनियाँ विज्ञापन पर तो बेतहाशा पैसा खर्च करती हैं लेकिन उपभोक्ताओं में जागरूकता को लेकर वे चवन्नी खर्च करने को तैयार नहीं हैं। नकली सामान के खिलाफ़ जागरूकता पैदा करने में स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थी मिलकर ठोस काम कर सकते हैं। ऐसा कि कोई प्रशासक भी न कर पाए।'

बेशक, इस कड़वे सच को स्वीकार कर लेना चाहिए कि गुणवत्ता के प्रति जागरूकता के लिहाज़ से शहरी समाज भी कोई ज़्यादा सचेत नहीं है। यह खुली हुई बात है कि किसी बड़े ब्रांड का लोकल संस्करण शहर या महानगर का मध्य या निम्नमध्य वर्गीय उपभोक्ता भी खुशी-खुशी खरीदता है। यहाँ जागरूकता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि वह ऐसा सोच-समझकर और अपनी जेब की हैसियत को जानकर ही कर रहा है। फिर गाँववाला उपभोक्ता ऐसा क्योंकर न करे। पर फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यदि समाज में कोई गलत काम हो रहा है तो उसे रोकने के जतन न किए जाएँ। यानी नकली सामान के इस गोरखधंधे पर विराम लगाने के लिए जो कदम या अभियान शुरू करने की ज़रूरत है वह तत्काल हो।

–हिंदुस्तान 6 अगस्त 2006, साभार

4. प्रेमचंद की कहानी ***ईदगाह*** के हामिद और उसके दोस्तों का बाज़ार से क्या संबंध बनता है? विचार करें।

विज्ञापन की दुनिया

1. आपने समाचारपत्रों, टी.वी. आदि पर अनेक प्रकार के विज्ञापन देखे होंगे जिनमें ग्राहकों को हर तरीके से लुभाने का प्रयास किया जाता है। नीचे लिखे बिंदुओं के संदर्भ में किसी एक विज्ञापन की समीक्षा कीजिए और यह भी लिखिए कि आपको विज्ञापन की किस बात ने सामान खरीदने के लिए प्रेरित किया।
   1. विज्ञापन में सम्मिलित चित्र और विषय-वस्तु
   2. विज्ञापन में आए पात्र व उनका औचित्य
   3. विज्ञापन की भाषा
2. अपने सामान की बिक्री को बढ़ाने के लिए आज किन-किन तरीकों का प्रयोग किया जा रहा है? उदाहरण सहित उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए। आप स्वयं किस तकनीक या तौर-तरीके का प्रयोग करना चाहेंगे जिससे बिक्री भी अच्छी हो और उपभोक्ता गुमराह भी न हो।

भाषा की बात

1. विभिन्न परिस्थितियों में भाषा का प्रयोग भी अपना रूप बदलता रहता है कभी औपचारिक रूप में आती है तो कभी अनौपचारिक रूप में। पाठ में से दोनों प्रकार के तीन-तीन उदाहरण छाँटकर लिखिए।
2. पाठ में अनेक वाक्य ऐसे हैं, जहाँ लेखक अपनी बात कहता है कुछ वाक्य ऐसे है जहाँ वह पाठक-वर्ग को संबोधित करता है। सीधे तौर पर पाठक को संबोधित करने वाले पाँच वाक्यों को छाँटिए और सोचिए कि ऐसे संबोधन पाठक से रचना पढ़वा लेने में मददगार होते हैं?
3. नीचे दिए गए वाक्यों को पढ़िए।

   (क) पैसा पावर है।

   (ख) पैसे की उस पर्चेज़िंग पावर के प्रयोग में ही पावर का रस है।

   (ग) मित्र ने सामने मनीबैग फैला दिया।

   (घ) पेशगी ऑर्डर कोई नहीं लेते।

   ऊपर दिए गए इन वाक्यों की संरचना तो हिंदी भाषा की है लेकिन वाक्यों में एकाध शब्द अंग्रेज़ी भाषा के आए हैं । इस तरह के प्रयोग को कोड मिक्सिंग कहते हैं। एक भाषा के शब्दों के साथ दूसरी भाषा के शब्दों का मेलजोल! अब तक आपने जो पाठ पढ़े उसमें से ऐसे कोई पाँच उदाहरण चुनकर लिखिए। यह भी बताइए कि आगत शब्दों की जगह उनके हिंदी पर्यायों का ही प्रयोग किया जाए तो संप्रेषणीयता पर क्या प्रभाव पड़ता है।

4. नीचे दिए गए वाक्यों के रेखांकित अंश पर ध्यान देते हुए उन्हें पढ़िए–
   (क) *निर्बल ही धन की ओर झुकता है।*
   (ख) *लोग संयमी भी होते हैं।*
   (ग) *सभी कुछ तो लेने को जी होता था।*

   ऊपर दिए गए वाक्यों के रेखांकित अंश 'ही', 'भी','तो' निपात हैं जो अर्थ पर बल देने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। वाक्य में इनके होने-न-होने और स्थान क्रम बदल देने से वाक्य के अर्थ पर प्रभाव पड़ता है, जैसे–

   मुझे भी किताब चाहिए। (***मुझे*** महत्त्वपूर्ण है।)
   मुझे किताब भी चाहिए। (***किताब*** महत्त्वपूर्ण है।)

   आप निपात (***ही, भी, तो***) का प्रयोग करते हुए तीन-तीन वाक्य बनाइए। साथ ही ऐसे दो वाक्यों का भी निर्माण कीजिए जिसमें ये तीनों निपात एक साथ आते हों।

चर्चा करें

1. ***पर्चेज़िंग पावर*** से क्या अभिप्राय है?
   बाज़ार की चकाचौंध से दूर ***पर्चेज़िंग पावर*** का सकारात्मक उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है? आपकी मदद के लिए संकेत दिया जा रहा है–
   (क) सामाजिक विकास के कार्यों में।
   (ख) ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में...।

शब्द-छवि

पर्चेज़िंग पावर	–	खरीदने की शक्ति
असबाब	–	सामान
दरकार	–	ज़रूरत
परिमित	–	सीमित
अतुलित	–	जिसकी तुलना न की जा सके
पेशगी	–	अग्रिम राशि
नाचीज़	–	महत्त्वहीन
अपदार्थ	–	जिसका अस्तित्व न हो
दारुण	–	भयंकर
अकिंचित्कर	–	अर्थहीन
स्पृहा	–	इच्छा
पसोपेश	–	असमंजस